

हर घर की कहानी • हर दिल की कहानी

रिश्ते

एक आम घर की कहानी,
जो हर दिल को अपनी लगे



कामरान असद

संपादक, मानवाधिकार मीडिया

kamranasad.in

रिश्ते

एक आम घर की कहानी, जो हर दिल को अपनी लगे

लेखक : कामरान असद

प्रथम संस्करण : 2026

© 2026 कामरान असद — सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक का कोई भी अंश लेखक की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रकाशित नहीं किया जा सकता। इस कहानी के सभी पात्र और घटनाएँ काल्पनिक हैं, परन्तु इनमें छिपी भावनाएँ हर घर की सच्चाई हैं। किसी जीवित या मृत व्यक्ति से समानता मात्र संयोग होगी।

वेबसाइट : kamranasad.in

समर्पण

उस आँगन के नाम,

जहाँ हम बड़े हुए,

उन हाथों के नाम, जिन्होंने हमें थामा,

और हर उस रिश्ते के नाम,

जो दूर रहकर भी दिल से दूर नहीं हुआ।

यह कहानी आपकी है, क्योंकि यह कहानी हर घर की है।

अनुक्रम

1. लेखक की कलम से — यह कहानी क्यों लिखी गई
2. अध्याय 1 : वो आँगन वाला घर
3. अध्याय 2 : पिता की खामोशी
4. अध्याय 3 : माँ के हाथ का खाना
5. अध्याय 4 : भाई-भाई के बीच एक दीवार
6. अध्याय 5 : बेटी की विदाई
7. अध्याय 6 : पति-पत्नी — साथ चलने का नाम
8. अध्याय 7 : बहू आई, बेटी बनकर
9. अध्याय 8 : दोस्ती — खून से गहरा रिश्ता
10. अध्याय 9 : मोबाइल आया, दूरियाँ बढ़ गईं
11. अध्याय 10 : जब अपने ही दूर हो जाएँ
12. अध्याय 11 : माफ़ी माँगने में देर
13. अध्याय 12 : एक मेज़ पर फिर पूरा परिवार
14. अध्याय 13 : दादी की कहानी, गुड़िया की गोद
15. अध्याय 14 : रिश्ते निभाना ही जिंदगी है
16. उपसंहार : कहानी खत्म होती है, रिश्ते नहीं
17. लेखक परिचय

पात्र परिचय — रामदयाल : घर के मुखिया, 67 वर्ष • सुमित्रा : उनकी पत्नी, 62 वर्ष • अरुण : बड़ा बेटा, दिल्ली में नौकरी • नेहा : अरुण की पत्नी • विक्रम : छोटा बेटा, कस्बे में दुकान • कविता : बेटी, विवाहित • मक़सूद चाचा : रामदयाल के बचपन के दोस्त

यह कहानी क्यों लिखी गई

हम सब एक घर में पैदा होते हैं, पर धीरे-धीरे ज़िंदगी हमें अलग-अलग शहरों, अलग-अलग कमरों और अलग-अलग ख़ामोशियों में बाँट देती है। फोन पर बात होती रहती है, त्योहार पर संदेश भी आ जाता है, फिर भी दिल में एक खाली जगह रह जाती है — वह जगह, जहाँ कभी पूरा परिवार एक साथ बैठा करता था।

पत्रकारिता और समाज के काम में मैंने हज़ारों लोगों से बात की है। अमीर हो या ग़रीब, गाँव का हो या शहर का — हर आदमी की कहानी में एक बात समान मिली। उसे पैसे से ज़्यादा अपनों की याद सताती है। बूढ़े पिता को बेटे की आवाज़ का इंतज़ार रहता है। माँ हर खाने में उस बच्चे का हिस्सा निकालती है जो घर पर है ही नहीं। भाई से झगड़ा होता है, पर मुसीबत में सबसे पहले उसी का नंबर मिलाया जाता है।

यह किताब उन्हीं रिश्तों की कहानी है। इसमें कोई राजा नहीं है, कोई बहुत बड़ा आदमी नहीं है। इसमें एक छोटा-सा कस्बा है, एक पुराना आँगन वाला घर है, आम के पेड़ के नीचे रखी एक चारपाई है, और एक साधारण परिवार है — बिल्कुल आपके जैसा, बिल्कुल मेरे जैसा।

मैंने इस कहानी को जान-बूझकर बहुत सरल भाषा में लिखा है। क्योंकि रिश्ते कठिन शब्दों से नहीं बनते। रिश्ते बनते हैं — “खाना खाया?”, “पहुँच गए?”, “तबीयत कैसी है?”, “मैं हूँ न” — इन्हीं छोटे-छोटे वाक्यों से।

जब आप रामदयाल बाबू को पढ़ेंगे, तो आपको अपने पिता याद आएँगे — ऊपर से सख्त, अंदर से सबसे नर्म। जब सुमित्रा अम्मा रसोई में खड़ी होंगी, तो आपको अपनी माँ की आँचल की खुशबू आएगी। अरुण में आपको वह बेटा दिखेगा जो शहर की भागदौड़ में फँसकर घर से दूर हो गया, और विक्रम में वह जो घर के पास रहकर भी अपने मन की बात कह नहीं पाया। कविता में हर बेटी दिखेगी, और मक़सूद चाचा में वह दोस्त, जो रिश्तेदार न होते हुए भी सबसे अपना होता है।

यह कहानी पढ़ते हुए अगर किसी पन्ने पर आपकी आँखें भर आएँ, तो समझिएगा — यह आँसू कहानी के नहीं हैं, आपके अपने किसी रिश्ते के हैं, जो दिल के किसी कोने में चुपचाप बैठा था।

किताब बंद करने से पहले बस एक छोटी-सी गुज़ारिश है। जिस अपने का चेहरा इस कहानी में सबसे ज़्यादा याद आए, उसे आज ही एक फोन कर दीजिएगा। रिश्ते कल पर टालने के लिए नहीं होते।

— कामरान असद

संपादक, मानवाधिकार मीडिया

वो आँगन वाला घर

कस्बे की पुरानी गली में आखिरी मकान रामदयाल बाबू का था। नीले रंग का दरवाज़ा, अंदर एक बड़ा-सा आँगन, कोने में आम का पुराना पेड़, और उसी पेड़ के नीचे एक चारपाई — यही उस घर की पहचान थी।

जो भी उस घर में पहली बार आता, वह कहता — “बाबूजी, आपका घर छोटा है, पर इसमें सुकून बहुत है।” बाबूजी मुस्कुराकर कहते, “घर ईंट से नहीं बनता बेटा, घर लोगों से बनता है।”

सुबह पाँच बजे सुमित्रा अम्मा उठ जातीं। चाय बनती, आँगन में झाड़ू लगती, तुलसी पर पानी पड़ता। बाबूजी अख़बार लेकर चारपाई पर बैठ जाते और हर ख़बर पर अपनी राय देते, चाहे सुनने वाला कोई हो या न हो। अम्मा रसोई से ही जवाब देतीं — “आपको तो हर बात में नुक्रस निकालना है।” बाबूजी हँस पड़ते। पचास साल की शादी में यह बहस रोज़ होती थी, और रोज़ दोनों को इसमें मज़ा आता था।

इसी घर में तीन बच्चे बड़े हुए थे। बड़ा अरुण — पढ़ने में तेज़, आँखों में बड़े शहर के सपने। बीच वाली कविता — घर की हँसी, जो रोते हुए को भी हँसा दे। और सबसे छोटा विक्रम — सबका लाड़ला, जो हर बात में कहता, “मैं तो यहीं रहूँगा, अम्मा-बाबूजी के पास।”

एक समय था जब आँगन कभी खाली नहीं रहता था। शाम होते ही मोहल्ले के बच्चे आम के पेड़ के नीचे जमा हो जाते। अम्मा सबके लिए कभी आचार-रोटी, कभी गुड़-चना निकाल लातीं। कोई बच्चा खाली हाथ नहीं लौटता था। बाबूजी कहते थे, “जिस घर से कोई भूखा लौट जाए, वह घर अमीर होकर भी गरीब है।”

फिर समय बदला। अरुण की नौकरी दिल्ली में लग गई। कविता की शादी हो गई, वह दूसरे शहर चली गई। विक्रम ने कस्बे में ही छोटी-सी दुकान खोल ली। घर वही रहा, लोग कम हो गए।

अम्मा आज भी शाम को आँगन में दो कुर्सियाँ ज़्यादा लगाती थीं। बाबूजी टोकते, “किसके लिए?” अम्मा कहतीं, “क्या पता, कोई आ जाए।” सच यह था कि माँ का दिल कभी यह मानता ही नहीं कि बच्चे दूर चले गए हैं। उसके लिए वे बस थोड़ी देर के लिए बाहर गए हैं।

उस दिन रविवार था। अरुण का फोन आया। “अम्मा, इस बार छुट्टी नहीं मिल रही। दिवाली पर शायद आऊँ।” अम्मा ने कहा, “ठीक है बेटा, काम पहले।” फोन रखने के बाद वह देर तक आँगन की ओर देखती रहीं। बाबूजी ने अखबार से नज़र उठाए बिना कहा, “दिवाली में अभी चार महीने हैं।” अम्मा बोलीं, “माँ के लिए चार महीने, चार साल जैसे होते हैं। आप नहीं समझेंगे।” बाबूजी चुप हो गए। वे समझते सब थे, बस कहते नहीं थे। पिता अक्सर ऐसा ही होता है — उसके प्यार की भाषा शब्द नहीं, खामोशी होती है।

दिल की बात

घर दीवारों से नहीं, इंतज़ार करने वालों से घर बनता है। जहाँ कोई आपका इंतज़ार करता है, वही आपका असली पता है।

पिता की खामोशी

अरुण को बचपन से एक शिकायत थी — “बाबूजी ने कभी मुझसे नहीं कहा कि वे मुझसे प्यार करते हैं।”

वह देखता था, दूसरे बच्चों के पिता उन्हें गले लगाते, घुमाने ले जाते, फोटो खिंचवाते। उसके बाबूजी बस इतना कहते — “पढ़ो। समय बर्बाद मत करो।” अगर अरुण अच्छे नंबर लाता, तो बाबूजी अम्मा से कहते, “सुनती हो, लड़का ठीक जा रहा है।” अरुण को लगता, एक बार सीधे मुझसे कह देते तो क्या जाता।

सालों बाद, जब अरुण खुद पिता बना, तब उसे समझ आया कि उसके बाबूजी का प्यार कहाँ छिपा था।

उसे याद आया — परीक्षा के दिनों में बाबूजी रात को चुपचाप उसके कमरे के बाहर से गुज़रते थे। सर्दी में उसकी रज़ाई ठीक कर देते थे। नौकरी के इंटरव्यू के लिए जाते समय बाबूजी ने स्टेशन पर कुछ नहीं कहा, बस जेब में चुपके से कुछ रुपये रख दिए — वे रुपये उन्होंने अपनी नई चप्पल टालकर बचाए थे।

एक बार बरसात में घर की छत टपकने लगी। बाबूजी अकेले छत पर चढ़ गए। काम करते-करते उनका पैर फिसला, वे गिरते-गिरते बचे। उस रात अम्मा बहुत नाराज़ हुई — “इस उम्र में ये काम शोभा देता है?” बाबूजी बोले, “बच्चों के सिर पर छत टपके, यह मुझसे देखा नहीं जाता।”

पिता ऐसा ही होता है। वह अपनी थकान नहीं दिखाता। अपनी बीमारी छोटी बताता है। अपनी पसंद की चीज़ “मुझे अच्छी नहीं लगती” कहकर बच्चों की थाली में रख देता है। वह रोता भी है तो अकेले में, ताकि घर की हिम्मत न टूटे।

एक शाम बाबूजी की तबीयत कुछ ठीक नहीं थी। विक्रम डॉक्टर को बुलाने की ज़िद करने लगा। बाबूजी ने हाथ से मना किया — “दवा ले ली है, ठीक हो जाऊँगा। पैसे बेकार खर्च मत कर।” विक्रम गुस्से में बोला, “आप हर बार पैसे की बात क्यों करते हैं? हम कमाते किसलिए हैं?” बाबूजी मुस्कराए, “तुम लोग मेरी दवा से ज़्यादा मेरी फ़िक्र से ठीक कर देते हो। बस साथ बैठ जाओ, वही काफ़ी है।”

उस रात विक्रम देर तक चारपाई के पास बैठा रहा। बाबूजी सो गए, पर उनका हाथ विक्रम के हाथ पर ही रहा — जैसे बचपन में वे डर लगने पर थाम लिया करते थे। विक्रम ने मन में कहा — कुछ रिश्तों में हाथ थामना ही “मैं तुमसे प्यार करता हूँ” कहने का तरीका होता है।

दूर दिल्ली में अरुण ने उस रात अचानक बाबूजी को फोन किया। “बस ऐसे ही किया, बाबूजी। आप कैसे हैं?” दूसरी ओर कुछ देर खामोशी रही। फिर बाबूजी बोले, “मैं ठीक हूँ। तू खाना समय पर खाया कर।” फोन कटने के बाद बाबूजी ने अम्मा से कहा, “आज अरुण ने बिना काम के फोन किया।” उनकी आवाज़ में वह खुशी थी जो वे बेटे के सामने कभी दिखा नहीं पाए थे।

दिल की बात

पिता का प्यार ढूँढना हो तो उसकी बातों में नहीं, उसके त्याग में ढूँढिए। जो आदमी आपके लिए अपनी हर छोटी ख्वाहिश टालता रहा, वही सबसे ज़्यादा बोलता है — बस बिना बोले।

माँ के हाथ का खाना

दुनिया में बड़े-बड़े होटल हैं, बड़े-बड़े रसोइए हैं, पर किसी भी इंसान के लिए सबसे अच्छा खाना आज भी वही है — माँ के हाथ का।

अरुण दिल्ली में अच्छे रेस्टोरेंट में खाना खाता था। नेहा भी अच्छा खाना बनाती थी। फिर भी कभी-कभी दफ्तर से लौटते हुए उसे अम्मा की दाल याद आ जाती — वह साधारण-सी दाल, जिसमें न कोई खास मसाला था, न कोई दिखावा। बस उसमें माँ का हाथ था, और माँ के हाथ का कोई मुकाबला नहीं होता।

अम्मा को हर बच्चे की पसंद मुँहज़बानी याद थी। अरुण को करेले पसंद नहीं थे, पर अम्मा भरवाँ करेले इस तरह बनातीं कि वह माँगकर खाता। कविता को खीर में इलायची ज़्यादा पसंद थी। विक्रम को सुबह की चाय के साथ मठरी चाहिए होती थी। अम्मा किसी की पसंद नहीं भूलती थीं, अपनी पसंद उन्हें याद ही नहीं थी। कोई पूछता, “अम्मा, आप क्या खाएँगी?” तो वे कहतीं, “जो सब खाएँगे, वही मैं भी।”

यही माँ होती है। वह सबके लिए बनाती है, सबको खिलाती है, और खुद सबसे अंत में, सबसे कम खाती है। अगर रोटी कम पड़ जाए तो कह देती है — “मेरा पेट भरा है।” जबकि असल में उसे भूख लगी होती है। माँ का पेट बच्चों को देखकर भर जाता है — यह बात दुनिया की किसी किताब में नहीं लिखी, पर हर घर में सच है।

एक बार कविता ससुराल से आई हुई थी। बीमार-सी, थकी हुई। अम्मा ने बिना कुछ पूछे उसके सिर में तेल लगाया, उसकी पसंद का खाना बनाया। कविता बोली, “अम्मा, आप हर बार कैसे समझ जाती हैं कि मुझे क्या चाहिए?” अम्मा ने हँसकर कहा, “माँ बनोगी तो समझ जाओगी। बच्चा बोले या न बोले, माँ उसके चेहरे से पढ़ लेती है।”

कविता की आँखें भर आईं। ससुराल में वह बहू थी, ज़िम्मेदार थी, सबका ध्यान रखती थी। मायके में आकर वह फिर बेटी बन जाती थी — जिसका ध्यान रखने वाला कोई था। हर बेटी के लिए मायका इसीलिए ख़ास होता है। वहाँ उसे कुछ साबित नहीं करना पड़ता। वह जैसी है, वैसी ही प्यारी है।

उसी शाम अम्मा ने एक पुराना डिब्बा निकाला। उसमें बच्चों के बचपन की छोटी-छोटी चीज़ें थीं — अरुण की पहली रिपोर्ट कार्ड, कविता की टूटी हुई चूड़ी, विक्रम का लिखा पहला अक्षर। विक्रम बोला, “अम्मा, ये कचरा क्यों रखती हैं?” अम्मा बोलीं, “तुम लोगों के लिए ये कचरा होगा, मेरे लिए ये मेरी पूरी ज़िंदगी है। जब तुम लोग पास नहीं होते, तो मैं इन्हीं को देखकर दिन काट लेती हूँ।”

कमरे में खामोशी छा गई। हमें लगता है माँ-बाप को हमारी चीज़ों की ज़रूरत है। सच यह है कि उन्हें सिर्फ़ हमारी मौजूदगी चाहिए — कभी-कभी की एक मुलाक़ात, एक फोन, एक साथ खाया हुआ खाना।

जाने से पहले कविता ने अम्मा की साड़ी का कोना पकड़ा और कहा, “अम्मा, अपना ध्यान रखा करो।” अम्मा बोलीं, “तुम लोग खुश रहो, मेरा ध्यान अपने आप रह जाएगा।”

दिल की बात

माँ के हाथ के खाने का स्वाद मसालों से नहीं आता। वह उस ममता से आता है जो हर निवाले में घुली होती है। इसलिए वह स्वाद दुनिया में कहीं और नहीं मिलता।

भाई-भाई के बीच एक दीवार

बचपन में अरुण और विक्रम एक ही थाली में खाना खाते थे। एक रोटी के दो टुकड़े होते, पर झगड़ा कभी खाने पर नहीं होता था। झगड़ा होता था तो इस बात पर कि आम के पेड़ की छाँव वाली जगह पर पहले कौन बैठेगा।

बड़े होने पर झगड़े की वजह बदल गई।

बाबूजी ने रिटायर होने के बाद सोचा कि घर के पीछे वाली छोटी ज़मीन के कागज़ साफ़ करा लें, ताकि बाद में बच्चों में कोई विवाद न हो। बातचीत में उन्होंने कह दिया, “पीछे वाला हिस्सा विक्रम के नाम सोच रहा हूँ, वह यहीं रहता है, दुकान भी पास है। अरुण को दिल्ली में फ्लैट के लिए पैसे दे दूँगा।”

बात बाबूजी ने बराबरी सोचकर कही थी, पर अरुण तक पहुँचते-पहुँचते उसका रंग बदल गया। किसी ने कहा, “देखा, छोटा ही हमेशा प्यारा होता है।” अरुण के मन में कड़वाहट बैठ गई। विक्रम को लगा, भैया को मुझ पर भरोसा नहीं रहा। एक ही घर के दो भाई, बिना लड़े, बिना कुछ कहे, एक-दूसरे से दूर होने लगे।

फोन पर बात होती, पर औपचारिक। “कैसे हो?” — “ठीक हूँ।” बस। पहले जो बातें घंटों चलती थीं, वे मिनटों में खत्म होने लगीं। अम्मा दोनों से अलग-अलग पूछतीं, “तुम दोनों में कुछ हुआ है क्या?” दोनों कहते, “नहीं, सब ठीक है।” माँ सब समझती थी। भाई-भाई के बीच जब दीवार बनती है, तो वह ईंट की नहीं होती — वह चुप्पी की होती है। और चुप्पी की दीवार सबसे मज़बूत होती है, क्योंकि उसे तोड़ने के लिए पहला शब्द बोलना पड़ता है, और दोनों ही इंतज़ार करते हैं कि पहला शब्द दूसरा बोले।

एक दिन विक्रम की दुकान में आग लगते-लगते बची। शॉर्ट सर्किट से धुआँ उठा, आसपास के लोग दौड़े, सामान कुछ जला, कुछ बच गया। विक्रम घबराया हुआ था। उसने बाबूजी को नहीं बताया — “वे परेशान होंगे।” अम्मा को नहीं बताया। पर रात को उसने सबसे पहला फोन अरुण को किया।

“भैया, दुकान में आग लग गई थी।” अरुण की आवाज़ एकदम बदल गई — “तू ठीक है न? अम्मा-बाबूजी को पता है? मैं सुबह की पहली गाड़ी से आ रहा हूँ।” विक्रम बोला, “नहीं भैया, सब ठीक है, आप मत आओ, काम होगा।” अरुण ने कहा, “दुकान फिर बन जाएगी। भाई एक ही है।”

उस रात दोनों देर तक बात करते रहे। ज़मीन की बात भी निकली। अरुण ने साफ़ कहा, “मुझे ज़मीन नहीं चाहिए थी विक्रम, मुझे बस यह लगा था कि मैं दूर हूँ तो शायद अब मैं घर का हिस्सा नहीं रहा।” विक्रम की आवाज़ भर्रा गई — “भैया, आप दूर हैं तो क्या हुआ, इस घर की हर ईंट पर आपका भी उतना ही हक़ है जितना मेरा। और सच कहूँ तो अम्मा-बाबूजी को संभालते हुए कभी-कभी मुझे लगता था कि सारी ज़िम्मेदारी अकेले मेरे कंधे पर है। यह बात मैं आपसे कह नहीं पाया।”

दोनों तरफ़ ग़लतफ़हमी थी, दोनों तरफ़ प्यार भी था। बस बीच में कहने-सुनने की कमी थी।

अगली बार जब अरुण घर आया, दोनों भाइयों ने बाबूजी के सामने बैठकर बात की। बाबूजी ने कहा, “मुझे माफ़ करना, मैंने बाँटने की बात करके ग़लती की। माँ-बाप की असली दौलत ज़मीन नहीं होती, उनके बच्चों का आपसी प्यार होता है। ज़मीन काग़ज़ पर बँट सकती है, दिल नहीं बँटना चाहिए।” उस दिन तय हुआ — घर सबका रहेगा, काग़ज़ जो भी हो।

शाम को दोनों भाई आम के पेड़ के नीचे बैठे थे, बिल्कुल बचपन की तरह। विक्रम बोला, “भैया, छाँव वाली जगह आज आप बैठ जाओ।” अरुण हँसा, “नहीं, आज आधी-आधी।”

दिल की बात

भाइयों के बीच लड़ाई संपत्ति से नहीं होती, संवाद की कमी से होती है। जो बात आज कह दी जाए, वह कल दीवार नहीं बनती। पहला शब्द बोलने वाला छोटा नहीं होता — वही सबसे बड़ा होता है।

बेटी की विदाई

कविता की शादी का दिन घर में सबसे खुशी का दिन था, और सबसे भारी भी।

मोहल्ले में शहनाई बज रही थी, आँगन में रोशनी थी, मेहमान हँस रहे थे। पर बाबूजी बार-बार अंदर के कमरे में जाते और अकेले बैठ जाते। अम्मा ने पूछा, “क्या हुआ, तबीयत ठीक है?” बाबूजी बोले, “ठीक है। बस... कल से इस घर में कविता की आवाज़ नहीं गूँजेगी, यही सोच रहा था।”

कविता घर की जान थी। बाबूजी की दवा का समय उसे याद रहता। अम्मा की चुप्पी वह सबसे पहले भाँपती। भाइयों के झगड़े में वह बीच-बचाव करती। उसके बिना घर की कल्पना ही कठिन थी।

विदाई के समय हर कोई रोया। अम्मा ने कविता को गले लगाकर कहा, “ससुराल को अपना घर समझना। वहाँ के लोगों को उतना ही प्यार देना जितना यहाँ दिया। पर एक बात याद रखना — यह दरवाज़ा तेरे लिए कभी बंद नहीं होगा। खुशी में आना, और कभी मन भारी हो तो बिना बताए भी चली आना। मायका बेटी का वह ठिकाना है जहाँ उसे कारण नहीं देना पड़ता।”

राकेश, कविता के पति, ने बाबूजी के पैर छुए। बाबूजी ने उसका हाथ थामकर धीरे से कहा, “बेटा, मैं तुम्हें अपनी बेटी नहीं दे रहा, अपने दिल का एक टुकड़ा दे रहा हूँ। इसका ध्यान रखना। कभी गलती करे तो नाराज़ होकर बता देना, पर हाथ कभी न उठाना, और मेरी बेटी को कभी यह महसूस न कराना कि वह अकेली है।” राकेश की आँखें भर आई — “बाबूजी, आज से आपकी बेटी नहीं, मेरी ज़िम्मेदारी भी है और मेरा सम्मान भी।”

गाड़ी चली गई। आँगन खाली हो गया। उस रात घर में खाना बना, पर किसी ने ठीक से नहीं खाया। विक्रम बोला, “घर कितना सूना लग रहा है।” बाबूजी बोले, “बेटी घर से जाती नहीं है बेटा, वह एक घर से दूसरे घर में रोशनी लेकर जाती है। सूना यहाँ लगता है, उजाला वहाँ होता है।”

शादी के बाद कविता जब पहली बार मायके आई, तो अम्मा ने देखा — वह पहले से ज़्यादा समझदार हो गई थी। अब वह माँ से रसोई में हाथ बँटाती, भाइयों को सलाह देती, बाबूजी के लिए फल काटकर देती। बेटी जब बहू बनती है, तो वह दोगुनी हो जाती है — एक घर की बेटी, दूसरे घर की लक्ष्मी।

एक दिन कविता ने बाबूजी से कहा, “बाबूजी, शादी के बाद समझ आया कि आप लोग कितना कुछ बिना कहे करते थे। वहाँ जब मैं थक जाती हूँ तो आपकी याद आती है। लगता है, काश थोड़ी देर आपके पास बैठ जाऊँ।” बाबूजी मुस्कुराए, “तो बैठा कर। फोन पर ही सही। बेटी दूर हो सकती है, पर पिता के दिल से कभी दूर नहीं होती।”

उस शाम कविता ने अपने ससुराल फोन करके अपनी सास से देर तक बात की। रिश्ते ऐसे ही बढ़ते हैं — जब हम एक घर के प्यार को दूसरे घर तक पहुँचाते हैं।

दिल की बात

बेटी की विदाई अंत नहीं होती। वह प्यार का विस्तार होती है — एक आँगन से दूसरे आँगन तक। जो घर बेटी को सम्मान से विदा करता है और जो घर उसे सम्मान से अपनाता है, दोनों घर धन्य होते हैं।

पति-पत्नी — साथ चलने का नाम

अरुण और नेहा की शादी को आठ साल हो गए थे। प्यार था, पर समय नहीं था।

दिल्ली की ज़िंदगी ऐसी ही होती है — सुबह की भागदौड़, दिन भर दफ़्तर, शाम को थकान। बात होती थी तो सिर्फ़ काम की। “बिजली का बिल भरा?” — “गुड़िया का स्कूल कल बंद है।” — “दूध ख़त्म हो गया है।” धीरे-धीरे दोनों को लगने लगा कि वे पति-पत्नी कम, एक घर चलाने वाले दो साथी ज़्यादा रह गए हैं।

छोटी-छोटी बातों पर चिड़चिड़ाहट होने लगी। नेहा को लगता, अरुण घर की तरफ़ ध्यान नहीं देता। अरुण को लगता, नेहा उसकी थकान नहीं समझती। दोनों सही थे, दोनों ग़लत भी थे। क्योंकि दोनों एक-दूसरे से बात करने के बजाय एक-दूसरे के बारे में सोचकर नतीजे निकाल रहे थे।

एक रात गुड़िया बीमार हो गई। बुखार तेज़ था। दोनों सारी रात जागे। अरुण दवा लाया, नेहा ठंडी पट्टियाँ रखती रही। सुबह जब बुखार उतरा, तो दोनों बरामदे में चाय पीते हुए चुपचाप बैठे थे। नेहा बोली, “जब गुड़िया ठीक होती है तो हमें एक-दूसरे की कमी नहीं खलती। आज रात लगा — हम लड़ते क्यों हैं, हम तो एक ही टीम हैं।” अरुण ने कहा, “शायद इसलिए लड़ते हैं क्योंकि हम बात करना भूल गए हैं। काम की बात होती है, मन की नहीं।”

उस दिन दोनों ने एक छोटा-सा नियम बनाया — रात को दस मिनट, बिना फोन के, सिर्फ़ बात। शुरू में अजीब लगा। फिर धीरे-धीरे वही दस मिनट दिन का सबसे अच्छा समय बन गया। नेहा ने बताया कि वह अपनी नौकरी में कितना दबाव महसूस करती है। अरुण ने बताया कि वह घर से दूर रहने का अपराध-बोध हर दिन ढोता है। जो बातें सालों से मन में थीं, वे दस-दस मिनट में बाहर आने लगीं।

उन्हें समझ आया — पति-पत्नी का रिश्ता बड़े-बड़े वादों से नहीं चलता। वह चलता है रोज़ की छोटी देखभाल से। थके हुए के लिए एक गिलास पानी, बीमारी में जागी हुई एक रात, ग़लती पर “ठीक है, हो जाता है” कह देने से, और सबसे बढ़कर — सुनने से।

उधर कस्बे में बाबूजी और अम्मा की शादी को पचास साल होने वाले थे। विक्रम ने पूछा, “बाबूजी, आप और अम्मा कभी लड़ते नहीं?” बाबूजी हँसे, “लड़ते हैं, रोज़ लड़ते हैं। पर हम एक नियम कभी नहीं तोड़ते — नाराज़गी रात भर नहीं रखते, और एक-दूसरे की इज़्ज़त सबके सामने कभी कम नहीं करते। झगड़ा कमरे में होता है, सम्मान आँगन में।” अम्मा बोलीं, “और दूसरा नियम — ग़लती जिसकी हो, माफ़ी वही माँगे, छोटा-बड़ा देखे बिना। तुम्हारे बाबूजी ने मुझसे कई बार माफ़ी माँगी है।” बाबूजी बोले, “और तुमने मुझे हर बार बिना सुनाए माफ़ किया है। यही शादी है।”

अरुण ने जब यह बात सुनी, तो उसने नेहा से कहा, “हमें अम्मा-बाबूजी जैसी शादी चाहिए — जिसमें उम्र के साथ प्यार कम न हो, गहरा हो जाए।” नेहा मुस्कुराई, “उसके लिए पचास साल साथ चलना पड़ेगा।” अरुण बोला, “तो चलेंगे। धीरे-धीरे, पर साथ।”

दिल की बात

शादी दो परफ़ेक्ट लोगों का मिलन नहीं है। शादी दो साधारण लोगों का यह फ़ैसला है कि वे कठिन दिन में भी एक-दूसरे का साथ नहीं छोड़ेंगे। प्यार एहसास है, पर निभाना रोज़ का चुनाव है।

बहू आई, बेटी बनकर

जब नेहा शादी होकर पहली बार कस्बे वाले घर आई थी, तो उसके मन में डर था। फ़िल्मों और कहानियों में ससुराल की जो तस्वीर देखी थी, वह उसे बेचैन कर रही थी। क्या अम्मा मुझे अपनाएँगी? क्या मैं इस घर के रंग में ढल पाऊँगी?

पहली सुबह वह जल्दी उठकर रसोई में गई। अम्मा पहले से वहाँ थीं। नेहा बोली, “अम्मा, आज चाय मैं बनाती हूँ, आप बैठिए।” अम्मा ने उसका हाथ थामा और कहा, “चाय तो बन जाएगी बेटा, पहले यह बता — तुझे सुबह की चाय कैसी पसंद है, अदरक वाली या बिना? इस घर में आने वाले हर इंसान की पसंद यहाँ याद रखी जाती है। तू बहू बनकर आई है, पर यहाँ तू बेटी बनकर रहेगी। बहू शब्द रिश्ते का नाम है, दर्जे का नहीं।”

नेहा की आँखें भर आईं। जिस बात का डर था, वह पहली ही सुबह दूर हो गया।

बेशक सब कुछ हमेशा आसान नहीं रहा। कभी खाने के स्वाद पर, कभी घर के तरीकों पर छोटी-मोटी बातें हुईं। एक बार नेहा ने कुछ कहा, अम्मा को बुरा लगा, वे चुप हो गईं। नेहा को शाम तक एहसास हो गया। वह अम्मा के पास बैठी और बोली, “अम्मा, सुबह वाली बात के लिए माफ़ कर दीजिए। मेरा मतलब वह नहीं था।” अम्मा ने उसका सिर सहलाया — “बेटा, रिश्तों में गलती होना बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है उसे मान लेना। मेरी अपनी बेटी होती तो क्या मैं उससे नाराज़ रहती? तू भी तो वही है।”

उधर बाबूजी का अपना तरीका था। वे नेहा को हमेशा “बेटा” कहकर बुलाते। मोहल्ले में कोई पूछता तो कहते, “हमारे घर में दो बेटे थे, अब एक बेटी और आ गई है — नेहा।” यह सुनकर नेहा को लगता कि यह घर सच में उसका है।

सालों बाद जब अम्मा बीमार पड़ीं, तो नेहा ही थी जो दिल्ली से छुट्टी लेकर सबसे पहले पहुँची। उसने अम्मा की दवा, खाने और आराम का पूरा ध्यान रखा। अम्मा ने कमज़ोर आवाज़ में कहा, “मैंने कहा था न, तू बेटी बनकर रहेगी। देख, आज बेटी ही काम आई।” नेहा बोली, “अम्मा, आपने मुझे पहले दिन जो इज़ज़त दी थी, यह उसी का बदला है। रिश्तों में जो बोया जाता है, वही लौटकर आता है।”

हर घर में सास-बहू का रिश्ता ऐसा ही हो सकता है, अगर दोनों तरफ़ से एक-एक कदम बढ़ाया जाए। सास अगर बहू को बेटी की जगह दे, और बहू अगर सास को माँ की जगह — तो घर में दो औरतें नहीं रहतीं, एक मज़बूत परिवार बनता है। उम्र का अनुभव और युवा सोच जब मिलते हैं, तो घर चलता नहीं, खिलता है।

एक शाम अम्मा ने नेहा को अपनी पुरानी संदूकची से एक कंगन निकालकर दिया। “यह मेरी सास ने मुझे दिया था। आज मैं तुझे देती हूँ। चीज़ पुरानी है, पर इसके साथ एक बात भी देती हूँ — इस घर में प्यार बाँटने से कभी कम नहीं हुआ। आगे भी न हो, यह अब तेरे हाथ में है।” नेहा ने कंगन पहना नहीं, पहले उसे माथे से लगाया। कुछ उपहार क़ीमती नहीं होते, अनमोल होते हैं।

दिल की बात

बहू किसी घर में “बाहर से आई हुई” नहीं होती। वह उस घर का भविष्य लेकर आती है। उसे अपनापन मिले तो वह घर को सँवार देती है। रिश्ता नाम से नहीं, व्यवहार से बनता है।

दोस्ती — खून से गहरा रिश्ता

मक़सूद चाचा का घर गली के दूसरे सिरे पर था। धर्म अलग, घर अलग, खाना अलग — पर रामदयाल बाबू और मक़सूद चाचा की दोस्ती साठ साल पुरानी थी।

वे एक साथ स्कूल गए थे, एक साथ आम के पेड़ से गिरे थे, एक साथ मास्टर जी से डाँट खाई थी। जवानी में एक ने डाकखाने में नौकरी की, दूसरे ने छोटी-सी परचून की दुकान खोली। ज़िंदगी के रास्ते अलग हुए, पर दिल का रास्ता एक ही रहा।

ईद पर अम्मा के हाथ की सेवइयाँ मक़सूद चाचा के घर जातीं, और दीवाली पर मक़सूद चाचा की पत्नी के हाथ की मिठास बाबूजी के घर आती। बच्चे पूछते, “ये हमारे क्या लगते हैं?” अम्मा कहतीं, “ये वह रिश्ता है जिसका कोई नाम नहीं होता, पर जो हर नाम वाले रिश्ते के साथ खड़ा होता है। इन्हें चाचा कहते हैं, पर ये भाई से कम नहीं हैं।”

एक बार बाबूजी को अचानक अस्पताल ले जाना पड़ा। आधी रात का समय था। विक्रम शहर गया हुआ था। अरुण दिल्ली में था। अम्मा ने घबराकर मक़सूद चाचा को फोन किया। पाँच मिनट में चाचा अपने बेटे के साथ दरवाज़े पर थे। अस्पताल में ख़ून की ज़रूरत पड़ी तो सबसे पहला हाथ चाचा के बेटे का उठा। डॉक्टर ने पूछा, “मरीज़ से आपका क्या रिश्ता है?” चाचा बोले, “रिश्ता? यह मेरा भाई है। कागज़ पर नहीं लिखा, ज़िंदगी में लिखा है।”

बाबूजी ठीक होकर घर लौटे तो उन्होंने चाचा का हाथ पकड़कर कहा, “तू न होता तो...” चाचा ने बात काट दी — “यह मत कहना। मेरी बीमारी में तूने अपनी गाड़ी बेचकर मेरी मदद की थी, याद है? दोस्ती में हिसाब नहीं रखा जाता। हिसाब रखा जाए तो वह व्यापार हो जाता है।”

दोनों बूढ़े दोस्त शाम को आज भी आम के पेड़ के नीचे बैठते थे। बातें वही पुरानी, हँसी वही बचपन वाली। मोहल्ले के युवा उन्हें देखकर कहते — काश हमारी दोस्ती भी ऐसी हो, जो उम्र के साथ कमज़ोर न पड़े।

एक दिन विक्रम ने पूछा, “चाचा, इतनी लंबी दोस्ती का राज़ क्या है?” चाचा बोले, “तीन बातें। एक — दोस्त की खुशी में बिना बुलाए शामिल हो जाओ, दुख में बिना बताए पहुँच जाओ। दो — दोस्त की गलती सबके सामने नहीं, अकेले में बताओ। तीन — दोस्त से कभी वह उम्मीद न रखो जो तुम खुद पूरी न कर सको। दोस्ती माँगने से नहीं, देने से चलती है।”

रिश्ते सिर्फ जन्म से नहीं मिलते। कुछ रिश्ते हम खुद चुनते हैं, और वे चुने हुए रिश्ते कभी-कभी जन्म के रिश्तों से भी गहरे निकलते हैं। खून का रिश्ता हमें मिलता है, दोस्ती का रिश्ता हम निभाते हैं — इसीलिए शायद वह इतना खास होता है।

दिल की बात

सच्चा दोस्त वह नहीं जो अच्छे समय में साथ हँसे। सच्चा दोस्त वह है जो बुरे समय में बिना कहे आकर पास बैठ जाए — कभी-कभी चुपचाप बैठना ही सबसे बड़ी मदद होती है।

मोबाइल आया, दूरियाँ बढ़ गईं

एक ज़माना था जब घर में एक ही फोन होता था, और उस पर पूरे मोहल्ले की बातें होती थीं। आज हर हाथ में फोन है, पर घर में बातें कम हो गई हैं।

अरुण के घर की एक शाम की तस्वीर देखिए। दफ़्तर से लौटकर अरुण सोफ़े पर फोन देख रहा था। नेहा रसोई से आकर फोन पर किसी से बात कर रही थी। गुड़िया टैब पर कार्टून देख रही थी। तीन लोग, एक ही कमरा — पर तीनों अलग-अलग दुनिया में। खाना मेज़ पर रखा ठंडा हो रहा था, और किसी को होश ही नहीं था कि आज पूरे दिन में उन्होंने एक-दूसरे से दस वाक्य भी ठीक से नहीं बोले।

यह सिर्फ़ अरुण के घर की कहानी नहीं है। यह आज हर घर की कहानी है। हम दुनिया भर से जुड़ गए हैं, पर पास बैठे अपने से कट गए हैं। हज़ारों मील दूर के आदमी की ख़बर हमें तुरंत मिल जाती है, पर बगल में बैठी माँ के चेहरे की थकान दिखाई नहीं देती।

कस्बे वाले घर में भी यह बदलाव आ गया था। विक्रम दुकान से आकर फोन में हिसाब देखने लगता। बाबूजी अखबार पढ़ते हुए कहते, “ये फोन भी अजीब चीज़ है — सबको जोड़ता है, और सबसे दूर भी करता है।” अम्मा कहतीं, “फोन बुरा नहीं है जी, बुराई इसमें है कि हम इंसान से ज़्यादा इसे समय देने लगे हैं।”

एक दिन गुड़िया ने वीडियो कॉल पर दादी से कहा, “दादी, आप फोन में क्यों रहती हो? आप असली में आ जाओ न।” अम्मा हँस पड़ीं, पर उस हँसी के पीछे एक टीस थी। बच्चे के लिए रिश्ता स्क्रीन पर नहीं होता। रिश्ता गोद में होता है, साथ खेलने में होता है, कहानी सुनते-सुनते सो जाने में होता है।

उसी हफ़्ते अरुण और नेहा ने अपने घर में एक छोटा-सा नियम बनाया — खाने की मेज़ पर कोई फोन नहीं आएगा। शुरू के दो दिन सबको अजीब लगा, हाथ बार-बार जेब की ओर जाता। तीसरे दिन गुड़िया ने स्कूल की बातें सुनानी शुरू कीं। चौथे दिन नेहा ने हँसते हुए अपनी दफ़्तर की एक मज़ेदार घटना बताई। एक हफ़्ते में वह मेज़ फिर घर की सबसे प्यारी जगह बन गई — जहाँ खाना भी गरम था और बातें भी।

बाबूजी ने जब यह सुना तो बोले, “नियम अच्छा बनाया है। फोन को नौकर रखो, मालिक मत बनाओ। वह ख़बर देने के लिए है, रिश्ते निभाने के लिए नहीं। रिश्ते आज भी वैसे ही निभते हैं जैसे हमारे ज़माने में निभते थे — आमने-सामने बैठकर, आँखों में देखकर, और दिल से सुनकर।”

मोबाइल ने दूर के अपनों को पास लाने का अच्छा काम भी किया है। कविता दूर शहर से रोज़ माँ का चेहरा देख लेती है, यह उसी की देन है। बात तकनीक की नहीं है, संतुलन की है। जो चीज़ हमें जोड़ने के लिए बनी थी, वही हमें अलग कर दे — तो ग़लती चीज़ की नहीं, हमारे इस्तेमाल की है।

उस महीने से कस्बे वाले घर में भी एक रिवाज़ बन गया — रविवार की शाम, आँगन में सब बैठेंगे, फोन अंदर के कमरे में रहेंगे। चाय होगी, बातें होंगी, पुरानी कहानियाँ होंगी। विक्रम कहता है, वह एक घंटा पूरे हफ़्ते की थकान उतार देता है।

दिल की बात

स्क्रीन पर हज़ार चेहरे देख लेने से वह सुकून नहीं मिलता जो अपनों के साथ बैठकर एक कप चाय पीने से मिलता है। फोन उठाइए अपनों को जोड़ने के लिए — पर जब अपने पास हों, तो फोन रख दीजिए।

जब अपने ही दूर हो जाएँ

धीरे-धीरे घर में एक खामोशी रहने लगी थी, जो किसी को अच्छी नहीं लगती थी।

अरुण का फोन अब कम आता था। काम का दबाव, मीटिंग, समय की कमी — वजहें असली थीं, पर असर एक ही था : अम्मा-बाबूजी अकेलापन महसूस करने लगे थे। कविता भी अपने घर-परिवार में व्यस्त थी। विक्रम पास था, पर दुकान की ज़िम्मेदारियों में वह भी थका रहता।

बुजुर्गों का अकेलापन अजीब होता है। वे शिकायत नहीं करते, बस कहते हैं — “सब व्यस्त हैं, कोई बात नहीं।” पर रात को वही “कोई बात नहीं” सबसे भारी बात बन जाती है।

एक दिन अम्मा की सहेली घर आई। बातों-बातों में बोलीं, “आजकल के बच्चे फोन पर ही माँ-बाप निभा देते हैं।” अम्मा ने तुरंत अरुण का पक्ष लिया — “नहीं, मेरा बेटा ऐसा नहीं है। वह मजबूर है।” सहेली चली गई, पर अम्मा देर तक सोचती रहीं। माँ हमेशा बच्चे का पक्ष लेती है — दुनिया के सामने भी, और अपने दिल के सामने भी, चाहे दिल कितना ही अकेला क्यों न हो।

उधर दिल्ली में अरुण की हालत भी अलग नहीं थी। एक शाम वह बालकनी में खड़ा था। नीचे शहर की भीड़, रोशनी, शोर — पर उसे अपना कस्बा याद आ रहा था। आम का पेड़, बाबूजी की चारपाई, अम्मा की चाय। उसने नेहा से कहा, “हम यहाँ सब कुछ कमा रहे हैं — पैसा, नाम, सुविधा। पर एक चीज़ खो रहे हैं जो वापस नहीं आएगी — अम्मा-बाबूजी के साथ का समय। वे हर साल थोड़े और बूढ़े हो रहे हैं, और मैं हर साल थोड़ा और व्यस्त।”

नेहा बोली, “तो इस बार लंबी छुट्टी लो। फोन पर ‘कैसे हो’ पूछने से रिश्ता नहीं निभता। कभी-कभी जाकर पास बैठना पड़ता है।”

पर छुट्टी टलती रही। और फिर एक रात वह फोन आया जिसका डर हर उस बच्चे को होता है जो घर से दूर रहता है। रात के दो बजे विक्रम की आवाज़ काँप रही थी — “भैया, अम्मा की तबीयत बहुत ख़राब है। अस्पताल में हैं। आप आ जाइए।”

अरुण के हाथ से फोन गिरते-गिरते बचा। उस पल उसे लगा जैसे पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गई हो। मन में एक ही बात घूम रही थी — काश मैं पिछले महीने चला गया होता। काश मैंने कल फोन कर लिया होता। काश... यह “काश” शब्द इंसान को सबसे ज़्यादा तब सताता है जब समय हाथ से निकल रहा होता है।

वह उसी रात नेहा और गुड़िया को लेकर निकल पड़ा। रास्ते भर वह मन ही मन दुआ करता रहा — बस अम्मा ठीक हो जाएँ, इस बार मैं रुकूँगा, इस बार मैं समय दूँगा। अस्पताल के बाहर बाबूजी एक बेंच पर अकेले बैठे थे — थके हुए, बूढ़े, और बहुत डरे हुए। अरुण को देखते ही उनकी आँखें भर आईं, पर वे बोले सिर्फ़ इतना — “आ गया तू। अब तेरी अम्मा ठीक हो जाएगी। माँ को बेटे की शक्ल ही आधी दवा होती है।”

दिल की बात

दूरी शहरों की नहीं होती, प्राथमिकताओं की होती है। जो अपने सच में अपने हैं, उनके लिए समय निकाला नहीं जाता — समय बनाया जाता है। क्योंकि कुछ लोग हमेशा नहीं रहते, पर उनका इंतज़ार हमेशा रह जाता है।

माफ़ी माँगने में देर

अस्पताल के वे तीन दिन पूरे परिवार के लिए सबसे लंबे दिन थे।

अम्मा आईसीयू में थीं। डॉक्टर कहते थे, “प्रार्थना कीजिए, हम कोशिश कर रहे हैं।” कविता भी आ गई थी। पूरा परिवार अस्पताल के गलियारे में बैठा था — मजबूरी ने सबको एक जगह इकट्ठा कर दिया था।

खुशी में इकट्ठा होने का समय हम निकाल नहीं पाते, पर दुख हमें एक रात में इकट्ठा कर देता है।

बाबूजी एक कोने में चुप बैठे थे। अरुण उनके पास बैठा। बाबूजी ने धीरे से कहा, “तेरी अम्मा ने कल शाम को भी तेरा नाम लिया था। कह रही थी, अरुण को फोन करना है। मैंने कहा, सुबह कर लेना।” उनकी आवाज़ टूट गई — “काश मैंने उसी समय फोन लगा दिया होता।”

अरुण ने बाबूजी का हाथ थामा। “बाबूजी, अम्मा ठीक हो जाएँगी।” पर उसके मन में भी वही काश घूम रहा था — हम माफ़ी और प्यार, दोनों को हमेशा कल पर टालते हैं, और कभी-कभी समय वह मौक़ा ही छीन लेता है।

तीसरे दिन डॉक्टर ने मुस्कुराकर कहा, “खतरा टल गया है। मरीज़ होश में हैं, आप लोग बारी-बारी मिल सकते हैं।”

अरुण सबसे पहले अंदर गया। अम्मा ने कमज़ोर हाथ से उसका हाथ पकड़ा। “तू आ गया। अब मैं ठीक हो जाऊँगी।” अरुण की आँखों से आँसू बह निकले — “अम्मा, मुझे माफ़ कर दो। मैं बहुत दूर हो गया था। काम का बहाना बनाकर मैं आपके पास आना टालता रहा।” अम्मा ने धीरे से उसके सिर पर हाथ फेरा — “माँ कभी बेटे से नाराज़ नहीं होती बेटा। बस इंतज़ार करती है। और मेरा इंतज़ार आज पूरा हो गया।”

उस एक पल में अरुण को समझ आया — माफ़ी और प्यार, दोनों कल पर नहीं टालने चाहिए। ख़ास दिन वही होता है, जिस दिन आप कह दें।

बाहर गलियारे में विक्रम अकेला बैठा रो रहा था। अरुण उसके पास बैठा। विक्रम बोला, “भैया, मैं पास रहकर भी अम्मा की तबीयत का अंदाज़ा नहीं लगा पाया। मुझे लगता था वे बस थकी हैं। मुझसे भूल हुई।” अरुण ने उसके कंधे पर हाथ रखा — “भूल हम दोनों से हुई है। तू पास रहकर उनकी सेवा करता रहा, मैं दूर रहकर भी चिंता करता रहा। अब हम दोनों मिलकर ध्यान रखेंगे। अकेले तू क्यों ढोए सारी ज़िम्मेदारी?”

दो भाइयों के बीच जो हल्की-सी दीवार बची थी, वह अस्पताल के उस गलियारे में गिर गई। दुख ने वह कर दिया जो खुशी के दिन नहीं कर पाए — सबको फिर एक कर दिया।

कविता ने बाबूजी के लिए चाय लाकर दी। बाबूजी बोले, “बेटा, तेरी अम्मा हमेशा कहती थी — मेरा परिवार मेरी सबसे बड़ी दौलत है। आज समझ आया, वह सही कहती थी। पैसा अस्पताल का बिल भर सकता है, पर रात भर जागने वाले अपने नहीं खरीद सकता।”

दिल की बात

माफ़ी माँगने और प्यार जताने में कभी देर मत कीजिए। अहंकार कहता है — “पहले वह बोले।” दिल कहता है — “पहले मैं बोलूँ, कहीं देर न हो जाए।” हमेशा दिल की सुनिए।

एक मेज़ पर फिर पूरा परिवार

एक हफ़्ते बाद अम्मा घर लौट आई।

घर में जैसे फिर से जान आ गई। डॉक्टर ने कहा था — आराम, समय पर दवा, और सबसे ज़रूरी, खुश रहना। पूरे परिवार ने ठान लिया था कि इस बार कोई जल्दी नहीं करेगा, कोई तुरंत नहीं लौटेगा।

अरुण ने दफ़्तर से लंबी छुट्टी ले ली। कविता कुछ दिन और रुक गई। नेहा रसोई संभालती, विक्रम दवा और डॉक्टर की ज़िम्मेदारी, गुड़िया अम्मा को कहानियाँ सुनाती। बाबूजी चारपाई पर बैठे सबको देखते और मन ही मन भगवान का शुक्रिया अदा करते।

एक शाम अम्मा ने ज़िद की — “आज सब मेरे साथ आँगन में खाना खाएँगे। कोई कमरे में अलग नहीं खाएगा।” बड़ी-सी चटाई बिछी। थालियाँ लगीं। वही साधारण खाना — दाल, सब्ज़ी, रोटी, अचार — पर उस शाम उसका स्वाद किसी दावत से कम नहीं था। क्योंकि खाने का स्वाद खाने से नहीं, साथ बैठने वालों से आता है।

खाते-खाते पुरानी बातें निकलने लगीं। बचपन की शरारतें, बाबूजी की डाँट, अम्मा की छिपाकर दी हुई टॉफ़ियाँ, आम के पेड़ से गिरने की कहानी। सब हँस रहे थे। अम्मा बोलीं, “देखो, यही तो मैं हमेशा कहती थी — घर में रौनक़ लोगों से होती है। तुम सब हो तो यह बूढ़ा घर भी जवान लगता है।”

बाबूजी ने उस शाम एक बात कही जो सबके दिल में उतर गई। “बच्चों, एक बात हमेशा याद रखना। हम हमेशा नहीं रहेंगे। पर यह घर, यह आँगन, यह पेड़ — ये रहेंगे। इनसे बड़ा खज़ाना तुम्हारे पास एक और है — तुम तीनों का आपसी साथ। पैसे तुम सब कमा लोगे, नाम भी बना लोगे। पर भाई-बहन का रिश्ता अगर टूट गया तो वह दौलत किसी बाज़ार में नहीं मिलती। एक-दूसरे के लिए समय निकालते रहना। त्योहार पर एक साथ आते रहना। और जब हम न रहें, तब भी इस आँगन में दिवाली का दिया जलाते रहना।”

कुछ देर सब चुप रहे। फिर कविता बोली, “बाबूजी, ऐसी बातें मत करिए। आप लोग हमेशा रहेंगे।” बाबूजी मुस्कुराए, “रहेंगे बेटा — तुम्हारी यादों में, तुम्हारी आदतों में, तुम्हारे बच्चों को सुनाई जाने वाली कहानियों में। इंसान शरीर से जाता है, रिश्तों से कभी नहीं जाता।”

उस रात अरुण ने एक फ़ैसला किया। उसने नेहा से कहा, “हम हर दो महीने में घर आएँगे। और साल में एक बार पूरा परिवार — कविता भी — यहीं इकट्ठा होगा। चाहे काम कितना भी हो। काम ज़िंदगी के लिए है, ज़िंदगी काम के लिए नहीं।” नेहा ने कहा, “और मैं गुड़िया को यहाँ की हर बात सिखाऊँगी — ताकि अगली पीढ़ी भी इस आँगन को अपना माने।”

मक़सूद चाचा भी उस शाम आए। अम्मा की सेहत देखकर बोले, “भाभी, आपने तो सबको फिर एक मेज़ पर बिठा दिया।” अम्मा हँसीं, “भाई साहब, माँ का काम ही यही है — टूटे धागे गाँठ बाँधकर फिर जोड़ देना। गाँठ दिखती है, पर धागा टूटता नहीं।”

दिल की बात

परिवार का एक साथ खाना खाना छोटी बात नहीं है। वह रिश्तों की सबसे बड़ी दवा है। जिस घर में लोग साथ बैठकर खाते हैं और बातें करते हैं, वहाँ दीवारें पुरानी हो सकती हैं, रिश्ते कभी पुराने नहीं होते।

दादी की कहानी, गुड़िया की गोद

अम्मा के ठीक होने के बाद गुड़िया की ज़िद थी — “इस बार मैं दादी के पास सोऊँगी। दादी मुझे रोज़ कहानी सुनाएँगी।”

रात को अम्मा कहानी सुनातीं — राजा-रानी की नहीं, अपने बचपन की। कैसे वे नदी किनारे खेलती थीं, कैसे उनकी माँ चूल्हे पर रोटी बनाती थीं, कैसे बाबूजी से उनकी पहली मुलाक़ात मेले में हुई थी। गुड़िया आँखें फैलाकर सुनती। उसके लिए ये कहानियाँ किसी परीकथा से कम नहीं थीं, क्योंकि इनमें उसकी अपनी दादी नायिका थीं।

एक रात गुड़िया ने पूछा, “दादी, जब मैं बड़ी हो जाऊँगी और आप बूढ़ी हो जाएँगी, तो मैं आपको कहानी सुनाऊँगी, ठीक है?” अम्मा की आँखें भर आईं। “ठीक है मेरी गुड़िया। रिश्ते ऐसे ही आगे बढ़ते हैं — आज मैं तुझे सुनाती हूँ, कल तू अपने बच्चों को सुनाएगी। कहानियाँ रुकती नहीं हैं, वे पीढ़ी से पीढ़ी चलती हैं।”

बाबूजी का गुड़िया के साथ अपना अलग रिश्ता था। वे उसके लिए आम तोड़ते, उसे साइकिल चलाना सिखाते, और मोहल्ले में गर्व से कहते, “यह मेरी पोती है, मुझसे भी तेज़ सवाल पूछती है।” गुड़िया उनके चश्मे को छिपा देती और फिर खुद ही ढूँढकर देती। बाबूजी नकली नाराज़गी दिखाते, फिर दोनों हँस पड़ते। दादा-पोती की यह हँसी घर की सबसे मीठी आवाज़ थी।

बुजुर्गों के पास बच्चों के लिए सबसे बड़ी दौलत होती है — समय और अनुभव। और बच्चों के पास बुजुर्गों के लिए सबसे बड़ी दवा होती है — उनकी मासूमियत और उनकी मौजूदगी। जिन घरों में दादा-दादी और नाती-पोते साथ समय बिताते हैं, वहाँ बच्चे सिर्फ़ बड़े नहीं होते, वे जड़ों वाले होते हैं। उन्हें पता होता है कि वे कहाँ से आए हैं, उनके बड़े कौन थे, उनके घर की कहानी क्या है।

एक दिन गुड़िया ने अपने स्कूल की कॉपी में एक चित्र बनाया — एक बड़ा-सा पेड़, उसके नीचे पूरा परिवार। टीचर ने पूछा, “यह पेड़ क्या है?” गुड़िया बोली, “यह हमारे घर का आम का पेड़ है। दादाजी कहते हैं, परिवार भी पेड़ जैसा होता है — जड़ें बूढ़े होते हैं, तना मम्मी-पापा, और पत्ते हम बच्चे। जड़ मज़बूत हो तो पेड़ कभी गिरता नहीं।”

अरुण ने जब यह कॉपी देखी तो वह देर तक चुप रहा। उसने उसी दिन वह चित्र फ्रेम कराकर घर में लगा दिया। उसे समझ आ गया था कि वह दिल्ली में गुड़िया को अच्छी शिक्षा और अच्छा जीवन तो दे रहा है, पर सबसे अच्छी विरासत यही है — अपने लोगों की पहचान, अपने घर की कहानियाँ, और रिश्तों को निभाने का संस्कार। पैसे से खरीदी चीज़ें टूट जाती हैं, संस्कार पीढ़ियों तक चलते हैं।

जाने के दिन गुड़िया आम के पेड़ से लिपट गई — “मैं फिर आऊँगी। तुम यहीं रहना।” अम्मा मुस्कुराई, “पेड़ कहीं नहीं जाता बिटिया। वह इंतज़ार करता है। बिल्कुल दादी की तरह।”

दिल की बात

बच्चों को महँगे खिलौने से ज़्यादा दादा-दादी का समय याद रहता है। और बुजुर्गों को दवा से ज़्यादा बच्चों की हँसी ताक़त देती है। पीढ़ियों का यह साथ ही परिवार की असली पूँजी है।

रिश्ते निभाना ही ज़िंदगी है

समय फिर बीतने लगा, पर अब कुछ बदल गया था।

अरुण दिल्ली लौट गया, पर अब फोन रोज़ आता था — कभी लंबा, कभी दो मिनट का। “अम्मा, दवा ली?” — “बाबूजी, घुटनों का दर्द कैसा है?” बाबूजी अब भी ऊपरी मन से कहते, “सब ठीक है, तू काम देख।” पर फोन रखने के बाद उनकी मुस्कान देर तक रहती।

कविता हर त्योहार पर वीडियो कॉल पर पूरे घर को जोड़ लेती। विक्रम ने दुकान के साथ-साथ घर को भी समय देना सीख लिया। नेहा ने गुड़िया को दादी के पास कहानियाँ सुनने की आदत डाल दी — ताकि दूरी के बावजूद अगली पीढ़ी की जड़ें इस मिट्टी से जुड़ी रहें।

बाबूजी और अम्मा की शादी की पचासवीं सालगिरह पर पूरा परिवार फिर इकट्ठा हुआ। आँगन में छोटा-सा आयोजन था। मोहल्ले के लोग आए, मक़सूद चाचा सबसे आगे बैठे। केक कटा, पर सबसे ख़ास पल वह था जब अरुण, कविता और विक्रम ने मिलकर अम्मा-बाबूजी को एक पुरानी तस्वीर का बड़ा रूप भेंट किया — वही तस्वीर जिसमें पूरा परिवार आम के पेड़ के नीचे खड़ा था, बच्चे छोटे थे, बाबूजी जवान थे, अम्मा हँस रही थीं।

अम्मा तस्वीर को देखकर बोलीं, “समय कितनी जल्दी बीत गया।” बाबूजी बोले, “बीता नहीं सुमित्रा, जमा हुआ है। हर साल, हर याद इस तस्वीर में जमा है। ज़िंदगी लंबी नहीं होती, ज़िंदगी गहरी होती है — और हमारी ज़िंदगी बहुत गहरी रही, क्योंकि इसमें तुम सब थे।”

उस शाम अरुण ने सबसे कहा — “मैंने इस परिवार से एक बात सीखी है। रिश्ते मिलते तो सबको हैं, पर निभाए वही जाते हैं जो समय देते हैं, माफ़ करते हैं, और बिना कहे समझते हैं। घर बड़ा या छोटा होने से कुछ नहीं होता। दिल बड़ा होना चाहिए।”

रात को सब छत पर बैठे थे। आसमान में तारे थे। गुड़िया ने पूछा, “दादाजी, जब मैं बड़ी हो जाऊँगी, तब भी हम सब ऐसे ही मिलेंगे?” बाबूजी ने उसे गोद में बिठाया — “बेटा, रिश्ते पेड़ की तरह होते हैं। इन्हें समय का पानी देना पड़ता है। तुम देते रहोगी तो यह पेड़ तुम्हारे बच्चों को भी छाँव देगा।”

नीचे आँगन में आम का पेड़ खड़ा था — वही पुराना पेड़, जिसने इस परिवार की तीन पीढ़ियाँ देखी थीं। वह आज भी छाँव दे रहा था। बिल्कुल माँ-बाप की तरह — जो खुद धूप में खड़े रहकर बच्चों को छाँव देते हैं, और कभी जताते नहीं।

कहानी यहीं खत्म होती है, पर रिश्तों की कहानी कभी खत्म नहीं होती। वह हर घर में रोज़ लिखी जाती है — कभी एक फोन से, कभी एक मुलाकात से, कभी एक माफ़ी से, कभी साथ खाए एक खाने से।

आपके घर में भी एक आँगन है — भले ही वह एक छोटा-सा कमरा ही क्यों न हो। वहाँ भी कोई आपका इंतज़ार करता है। आज उस इंतज़ार को पूरा कर दीजिए।

॥ समाप्त ॥

आखिरी बात — दिल से

रिश्ते कमाए जाते हैं, खरीदे नहीं जाते। इन्हें समय चाहिए, सम्मान चाहिए, और कभी-कभी सिर्फ मौजूदगी चाहिए। जिसके पास अपने हैं, वह दुनिया का सबसे अमीर इंसान है — बस उसे यह बात समय रहते समझ आ जाए।

पाठक के नाम

प्रिय पाठक, अगर यह कहानी पढ़कर आपको किसी अपने की याद आई हो, तो इस किताब को बंद करके सबसे पहले उसी को फोन कीजिए। माँ हो, पिता हों, भाई, बहन, या कोई पुराना दोस्त — बस आवाज़ सुनाइए। यही इस किताब का असली मक़सद है।

और अगर कहानी आपके दिल को छू गई हो, तो इसे किसी ऐसे अपने को ज़रूर पढ़ाइए या भिजवाइए, जिससे आपकी बात हुए बहुत समय हो गया है। कभी-कभी एक किताब वह कह देती है, जो हम खुद कह नहीं पाते।

— कामरान असद

कहानी खत्म होती है, रिश्ते नहीं

रामदयाल बाबू के घर की कहानी आपने पढ़ ली। पर सच यह है कि यह कहानी अभी भी चल रही है — आपके घर में, मेरे घर में, हर उस घर में जहाँ लोग एक-दूसरे से जुड़े हैं और कभी-कभी एक-दूसरे से रूठ भी जाते हैं।

इस कहानी का हर पात्र हमसे कुछ कहकर गया है। बाबूजी कह गए कि पिता का प्यार शब्दों में नहीं, त्याग में दिखता है — इसलिए अपने पिता की खामोशी को कभी उनकी दूरी मत समझिए। अम्मा कह गई कि माँ का दिल बच्चों की खुशी से भरता है — इसलिए उनकी थाली में कभी-कभी अपनी पसंद की चीज़ रखकर देखिए, उनकी आँखों की चमक देखने लायक होगी।

अरुण कह गया कि भागदौड़ में छोटे रिश्ते एक फोन और एक सच्ची माफ़ी से फिर जुड़ जाते हैं। विक्रम कह गया कि पास रहना ही काफ़ी नहीं, मन की बात कहना भी ज़रूरी है। कविता कह गई कि बेटी दो घरों को जोड़ती है, नेहा कह गई कि बहू अपनापन पाकर बेटी बन जाती है, और मक़सूद चाचा कह गए कि दोस्ती मुसीबत में बिना बुलाए आ खड़ी होती है।

अगर इस कहानी से आप एक ही बात लेकर जाएँ, तो वह यह हो — रिश्तों को समय दीजिए। पैसा फिर कमा लेंगे, नाम फिर बना लेंगे, पर जो लोग आज साथ हैं, वे हमेशा साथ नहीं रहेंगे। माँ-बाप की आवाज़, भाई की हँसी, बहन की चिंता, दोस्त का साथ — ये सब ज़िंदगी की असली कमाई है।

आज, इसी समय, एक छोटा-सा काम कीजिए। फोन उठाइए और उस अपने को लगाइए, जिससे बात किए बहुत दिन हो गए हैं। कुछ ख़ास कहने की ज़रूरत नहीं है। बस इतना कहिए — “कैसे हो? तुम्हारी याद आ रही थी।” आप देखिएगा, उस एक छोटे-से वाक्य से दोनों दिलों में कितनी बड़ी गर्मी आती है।

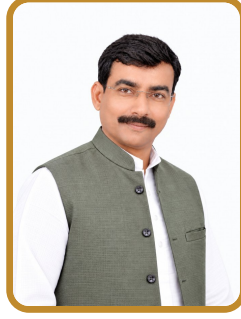
क्योंकि अंत में ज़िंदगी में यही रह जाता है — न मकान, न दौलत, न शोहरत। रह जाते हैं तो बस रिश्ते, और उन रिश्तों में बिताए हुए पल।

अपने रिश्तों को सहेजकर रखिए। यही मेरी आपसे दिल से गुज़ारिश है।

— कामरान असद

संपादक, मानवाधिकार मीडिया

लेखक परिचय



कामरान असद

संपादक — मानवाधिकार मीडिया

अध्यक्ष — पब्लिक राइट्स एसोसिएशन

अध्यक्ष — भारतीय मानवाधिकार महासंघ

कामरान असद पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता और मानवाधिकार नेता हैं। मानवाधिकार मीडिया के संपादक के रूप में वे वर्षों से आम आदमी की आवाज़ को मंच देते आए हैं — उन लोगों की कहानियाँ सामने लाते हुए जिनकी सुनवाई अक्सर कहीं नहीं होती।

उनकी लेखनी का केंद्र हमेशा आम इंसान रहा है — उसकी तकलीफ़, उसका संघर्ष, उसके रिश्ते और उसकी उम्मीद। यही वजह है कि उनकी किताबें सरल भाषा में हर दिल तक पहुँचती हैं।

अन्य पुस्तकें : बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र • अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं?

• आम आदमी के अधिकार

वेबसाइट : kamranasad.in

ईमेल : kamranasadjournalist@gmail.com

इस पुस्तक के बारे में

इस कहानी में कोई बड़ा घर नहीं है, कोई अमीर परिवार नहीं है। है — एक पुराना आँगन, आम का एक पेड़, एक चारपाई, और वे लोग जो हमारे-आपके घरों में रोज़ जीते हैं।

एक पिता, जो प्यार कहता नहीं, करके दिखाता है। एक माँ, जो सबको खिलाकर खुद सबसे अंत में खाती है। एक बेटा, जो शहर की भागदौड़ में घर से दूर हो गया। एक बेटी, जो विदा होकर भी दिल से कभी विदा नहीं हुई। एक भाई, एक बहू, और एक दोस्त — जो खून का रिश्ता न होते हुए भी सबसे अपना है।

यह कहानी पढ़ते हुए आपको लगेगा — अरे, यह तो मेरी कहानी है। यही इस किताब की सबसे बड़ी सफलता होगी।

“रिश्ते कमाए जाते हैं, खरीदे नहीं जाते।
इन्हें बस समय चाहिए, और थोड़ा-सा दिल।”

कामरान असद की अन्य पुस्तकें :

- बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र
- अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं?
- आम आदमी के अधिकार

सभी पुस्तकें उपलब्ध हैं — kamranasad.in